व्सेवोलोद गार्शिन

सिग्नल

व्सेवोलोद मिखाइलोविच गार्शिन का जन्म १८५५ में हुआ और ३३ वर्ष की आयु में ही उनका देहांत हो गया। अपने इस अल्प जीवन-काल में वह दस से कुछ अधिक कहानियां लिख पाए। इनमें अधिकांश बड़ों के लिए ही हैं। किंतु बाल-साहित्य और बच्चों के चरित्रनिर्माण की समस्याओं में भी गार्शिन सदा रुचि लेते रहे। वह पीटर्सबर्ग के शिक्षाकर्मियों की मण्डली में शामिल हुए। इसका उद्देश्य बच्चों के लिए पुस्तकें चुनने में माता-पिताओं और शिक्षकों की सहायता करना था। इस मण्डली के सदस्य के रूप में गार्शिन ने १८८५ और १८८६ में प्रकाशित वार्षिक पत्रिका 'बाल-साहित्य सर्वेक्षण' का सम्पादन किया। विदेशी लेखकों की कुछ बाल-कथाओं का भी उन्होंने अनुवाद किया। आज तक सोवियत बच्चे बड़ी दिलचस्पी से गार्शिन की बाल-कथाएं 'गर्वीला ताड़', 'मेंढकी और गुलाब' पढ़ते हैं। सबसे लोकप्रिय है—'मेंढक की यात्रा', जो गार्शिन ने पंचतंत्र की कछुए और सारसों की कहानी के आधार पर लिखी।

'सिग्नल' कहानी १८८७ में बड़ों के लिए पत्रिका में प्रकाशित हुई, लेकिन तुरंत ही बच्चों की प्रिय पुस्तक बन गई। सरल और रोचक ढंग से लिखी गई इस कहानी में लेखक इस प्रचलित विचार का खण्डन करता है कि संसार में बुराई का ही प्रभुत्व है। लेखक ने अपनी कहानी में भलाई में, मेहनतकश इन्सान के उत्तम नैतिक गुणों में विश्वास की पुष्टि की है।

सेम्योन इवानोव रेलवे में लाइनमैन का काम करता था। उसकी चौकी से एक स्टेशन नौ मील दूर था और दूसरा कोई सात मील। कोई तीन मील दूर पिछले साल एक बड़ी कताई मिल खुली थी। जंगल के पीछे से उसकी काली चिमनी दिखाई देती थी। आस-पास लाइनमैनों की चौकियों के अलावा कोई घर नहीं था।

सेम्योन इवानोव बीमार और टूटा हुआ आदमी था। नौ साल पहले वह लड़ाई में गया था। एक अफ़सर का अर्दली था वह और उसके साथ पूरे अभियान में रहा था। वहां उसे भूखा भी रहना पड़ा था और कड़कड़ाती ठंड व चिलचिलाती धूप भी सहनी पड़ी थी। सर्दी-गर्मी में वह तीस-तीस, चालीस-चालीस मील चला था। गोलियों की बौछार में भी चलना पड़ा था, पर भगवान की दया से एक भी गोली उसे नहीं लगी थी। एक बार उनकी रेजिमेंट मोर्चे की अगली लाइन में रही थी; हफ़्ते भर तक तुर्कों के साथ गोलियां चलती रहीं:

इधर हमारी टुकड़ी थी और खड्ड के पार तुर्कों की, सुबह से शाम तक गोलियां चलती रहती थीं। सेम्योन का अफ़सर भी उसी टुकड़ी में था; दिन में तीन बार रेजिमेंट के रसोईघर से सेम्योन उसके लिए खाना और गर्म समोवार ले जाया करता था। खुली जगह पर वह समोवार लेकर चलता, सायं-सायं करती गोलियां बरसतीं, पत्थरों से टकरातीं; सेम्योन का डर के मारे बुरा हाल होता, वह रोता, पर चलता जाता। अफ़सर लोग उससे बहुत खुश थे: उन्हें चौबीसों घंटे गर्म चाय मिलती रहती थी। इस अभियान से वह सही-सलामत लौटा, बस हाथ-पैर टूटने लगे थे। तब से उसे बहुत दुख झेलना पड़ा था। घर लौटा तो बूढ़ा बाप मर गया, गले की बीमारी थी उसे; सेम्योन घरवाली के साथ अकेला रह गया। खेतीबारी उनकी ठीक नहीं चली; फूले हाथों-पैरों से ज़मीन जोतना भी आसान नहीं था। अपने गांव में रहना उनके लिए नागवार हो गया और वे नई जगह सुख-चैन ढूंढ़ने निकल पड़े। सेम्योन अपनी बीवी के साथ खेर्सोन भी गया, दोन के इलाके में भी, पर कहीं उसे सुख नहीं मिला। बीवी नौकरानी का काम करने लगी और सेम्योन पहले की ही तरह भटकता फिर रहा था। एक बार वह रेलगाड़ी में कहीं जा रहा था; एक स्टेशन पर क्या देखता है कि स्टेशन मास्टर जाना-पहचाना लगता है। सेम्योन उसकी ओर ताक रहा था और स्टेशन मास्टर भी सेम्योन को गौर से देख रहा था। दोनों एक दूसरे को पहचान गए: वह उनकी रेजिमेंट का ही अफ़सर था।

"अरे, इवानोव है क्या?" उसने पूछा।

"जी हजूर, मैं ही हूं।"

"तू यहां कैसे आ पहुंचा?"

सेम्योन ने उसे अपनी सारी कहानी सुनाई।

"अब कहां जा रहा है?"

"कुछ पता नहीं, हजूर।"

"वाह रे भोंदू, कैसे पता नहीं?"

"ठीक बात है, हजूर। कोई ठौर-ठिकाना तो है नहीं। कोई काम-वाम ढूंढ़ना चाहिए, हजूर।"

स्टेशन मास्टर ने उसकी ओर देखा, फिर कुछ सोचकर बोला :

"अच्छा, सुन, तू अभी स्टेशन पर ही ठहर जा। तू तो शादीशुदा है न ? बीवी कहां है ?"

"जी हजूर, शादीशुदा हूं। बीवी कूर्स्क में एक व्यापारी के घर नौकर है।"

"अच्छा तो बीवी को लिख दे कि यहां चली आए। मैं उसके लिए मुफ़्त के टिकट का इंतज़ाम कर दूंगा। हमारे यहां एक चौकी ख़ाली होनेवाली है ; मैं डिवीजन मैनेजर से तेरी सिफ़ारिश कर दूंगा।"

"बहुत-बहुत शुक्रगुज़ार हूं, हजूर, माई बाप," सेम्योन ने जवाब दिया।

और वह स्टेशन पर रहने लगा। स्टेशन मास्टर के रसोईघर में कुछ काम कर देता था, लकड़ियां चीरता, आंगन की, प्लेटफ़ार्म की झाड़ू-बुहारी कर देता। दो हफ़्ते बाद बीवी आ गई और सेम्योन हथट्राली में सामान लादकर अपनी चौकी को चल दिया। चौकी नई ही थी, अंदर गर्म थी, लकड़ी की कोई कमी न थी ; पहले वाले लाइनमैन ने पास ही सब्ज़ी-वब्ज़ी के लिए कुछ क्यारियां बना रखी थीं और रेल लाइन के इधर-उधर कोई दो बीघा ज़मीन भी थी। सेम्योन ख़ुश हो गया ; सोचने लगा कि कैसे अपनी खेती करने लगेगा, गाय-घोड़ा ख़रीद लेगा।

काम के लिए सभी ज़रूरी चीज़ें उसे मिल गईं : हरी झंडी, लाल झंडी, लालटेनें, बिगुल, हथौड़ा, ढिबरियां कसने की चाबी, सब्बल, बेलचा, झाड़, बोल्ट और कीले। साथ में दो किताबें भी मिलीं – एक नियमों की और दूसरी टाइमटेबल की। शुरू-शुरू में तो सेम्योन रातें नहीं सोता था, टाइमटेबल रटता रहता था ; गाड़ी दो घंटे बाद जानेवाली होती, पर वह पहले से ही अपने हिस्से का चक्कर लगा आता, चौकी के पास बेंच पर बैठ जाता और ध्यान से देखता-सुनता रहता : पटरी तो नहीं हिल रही, गाड़ी की आवाज़ तो नहीं आ रही। सारे नियम भी उसने ज़बानी रट लिए ; पढ़ता तो वह मुश्किल से था – एक-एक अक्षर जोड़कर, फिर भी सब रट लिए।

गर्मियों के दिन थे, काम कोई ज़्यादा मुश्किल नहीं था, बर्फ़ हटाने की ज़रूरत नहीं और गाड़ियां भी उस लाइन पर कम ही चलती थीं। सेम्योन दिन में दो बार अपना पौन मील का चक्कर लगा आता ; कहीं-कहीं कोई

ढिबरी कस देता, रोड़ी ठीक कर देता, पानी के पाइप देख लेता और अपनी खेती करने घर लौट आता। खेती में एक बड़ी अड़चन थी: जो भी करना हो फ़ोरमैन से पूछो, वह डिवीजन मैनेजर को लिखेगा, जब तक इजाज़त मिलती, वह काम करने का वक़्त ही निकल चुका होता। सेम्योन और उसकी बीवी इसके मारे ऊबने भी लगे।

कोई दो महीने बीत गए; सेम्योन अपने आस-पास के लाइनमैनों से जान-पहचान करने लगा। एक तो बिल्कुल बूढ़ा था; उसे बदलने की सोच रहे थे; मुश्किल से चौकी में से बाहर निकलता था। उसकी घरवाली ही उसकी जगह लाइन का चक्कर लगाती थी। दूसरा लाइनमैन, जो स्टेशन की ओर वाली चौकी पर था, जवान ही था – दुबला-पतला सा, नसें उभरी हुईं। एक बार लाइन पर दोनों की मुलाकात हो गई; सेम्योन ने टोपी उतारी, झुककर सलाम किया, बोला:

"कहो भई पड़ोसी कैसे हो? मज़े में तो हो?"

पड़ोसी ने कनखियों से उसकी ओर देखा।

"नमस्ते!" और मुड़कर वापस चल दिया। इसके बाद एक बार दोनों की बीवियों की मुलाकात हो गई। सेम्योन की अरीना ने पड़ोसिन को नमस्ते की; उसने कोई बात नहीं की और चली गई। एक दिन सेम्योन ने उसे देखा, बोला:

"क्या बात है, बीबी, मर्द तेरा बात ही नहीं करता?"

वह कुछ देर चुप रही। फिर बोली:

"बातें क्या करे? हर किसी की अपनी ज़िंदगी है... जाओ, तुम अपनी देखो।"

ख़ैर, और एक महीना बीतते न बीतते दोनों की जान-पहचान हो गई। लाइन पर सेम्योन और वसीली मिलते, किनारे पर बैठ जाते, पाइप पीते और इधर-उधर की बातें करते। वसीली तो ज़्यादातर चुप ही रहता, सेम्योन उसे अपने गांव की, लड़ाई की बातें बताता रहता। एक दिन सेम्योन बताने लगा:

"उम्र तो मेरी ख़ास कुछ नहीं, पर दुख बहुत देखे हैं मैंने। सुख नहीं

मिला कहीं भी। आदमी की क़िस्मत में जो लिखा होता है, बस वही मिलता है उसे। यही बातें हैं, भाई मेरे।"

वसीली ने पाइप रेल पर ठोका और उठ खड़ा हुआ, बोला:

"हमारे पर क़िस्मत की मार नहीं, लोगों की मार है। इस दुनिया में आदमी से बढ़कर दुष्ट जानवर और कोई नहीं। भेड़िया भेड़िये को नहीं खाता, पर आदमी आदमी को जीते जी हड़प जाता है।"

"नहीं, भाई मेरे। यह बात तो नहीं। भेड़िया तो भेड़िये को खा जाता है।"

"वो तो मैंने बात में बात कह दी। पर फिर भी आदमी से कठोर कोई नहीं। अगर लोगों की दुष्टता और लालच न हो, तो चैन से जिया जा सकता है। हर कोई इसी ताक में रहता है कि कैसे तुझे काट ले, हड़प ले।"

सेम्योन सोच में पड़ गया, फिर बोला:

"पता नहीं, भैया। हो सकता है, ऐसा ही हो। पर ऐसा है भी तो सब भगवान की मर्ज़ी है।"

वसीली बोला:

"अगर ऐसा है, तो फिर मुझे तुमसे कोई बात नहीं करनी। हर अन्याय को भगवान की दुहाई देकर बैठे सहते रहो, तो फिर आदमी आदमी नहीं, जानवर है। मैं तो यही कहूंगा।"

और वह मुड़कर चल दिया, नमस्ते भी नहीं की। सेम्योन भी उठ खड़ा हुआ, चिल्लाया:

"वसीली, अरे नाराज़ क्यों होता है, भई!"

पर उसने मुड़कर नहीं देखा और चलता गया। सेम्योन देर तक उसे जाता देखता रहा जब तक कि मोड़ पर वसीली आंखों से ओझल नहीं हो गया। घर लौटकर बीवी से बोला:

"कैसा पड़ोसी है हमारा, अरीना। आदमी नहीं ततैया है।"

पर ख़ैर उनमें मन-मुटाव नहीं हुआ। अगले दिन फिर मिले और पहले की तरह बातें करने लगे, फिर वही चर्चा छिड़ गई।

"अरे भैया, अगर लोगों का ज़ुल्म न होता, तो हम यहां इन चौकियों में न बैठे होते," वसीली बोला।

17–1153

"चौकी भी क्या बुरी है... जिया जा सकता है।"

"ओफ़्फ़ो, जिया जा सकता है, जिया जा सकता है... बहुत जिए, पर कुछ नहीं पाया, बहुत देखा, पर कुछ नहीं जाना। ग़रीब आदमी चाहे चौकी में रहे या और कहीं, उसकी ज़िंदगी ज़िंदगी थोड़े ही है! ये कमबख़्त जीते जी खाते रहते हैं। सारा ख़ून निचोड़ लेते हैं और जब बूढ़े हो जाओगे, तो फोक की तरह उठा फेंकेंगे, सूअरों के खाने को। तुम्हें कितने पैसे मिलते हैं?"

"कोई ख़ास नहीं, भैया। बस बारह रूबल ही।"

"मुझे साढ़े तेरह मिलते हैं। अब तुम यह बताओ कि क्यों? क़ायदे से सबको एक सी तनख़्वाह मिलनी चाहिए: महीने में पंद्रह रूबल और आग, दिया-बत्ती अलग से। किसने यह तय किया कि हमें बारह या साढ़े तेरह मिलें? किसकी जेब में बाक़ी तीन या डेढ़ रूबल जाते हैं, कौन इनसे अपना दोज़ख़ भरता है, तुम बताओ तो मुझे!.. और तुम कहते हो जिया जा सकता है! समझते क्यों नहीं, बात डेढ़ या तीन रूबल की नहीं। चाहे पूरे पंद्रह ही क्यों न दें। अभी पिछले महीने मैं स्टेशन पर गया था। जनरल मैनजर जा रहा था देखा था मैंने उसे। ऐसे भाग खुले थे मेरे कि दर्शन हुए उनके! अपना अलग बोगी में साहब जा रहे हैं; प्लेटफ़ार्म पर निकले, ठाठ से खड़े हैं, तोंद पर सोने की ज़ंजीरी लटक रही है, गाल लाल-सुर्ख़... ख़ून पी-पीकर लाल हो गया, साला। ओह अगर इन हाथों में ताकत हो!.. नहीं, मैं यहां नहीं रहूंगा, चला जाऊंगा कहीं, जिधर भी सिर उठेगा।"

"कहां जाएगा, भाई मेरे! रोटी को लात मारकर कोई रोटी ढूंढ़ता है क्या? यहां पर तुझे घर भी मिला हुआ है, जाड़ों में घर गरमाने को लकड़ी है और थोड़ी-बहुत ज़मीन भी है! औरत तो तेरी मेहनती है..."

"क्या ज़मीन है! तुम आकर देखो तो मेरी ज़मीन। एक ठूंठ तक नहीं उगता। वसंत में मैंने बंदगोभी उगाने की सोची थी, तो फ़ोरमैन आ निकला, चिल्लाने लगा: 'यह क्या करते हो। रपट क्यों नहीं दी? बिना इजाज़त के क्यों बोई? उखाड़ो अभी, इसका नामोनिशान तक न रहे यहां।' पिए हुए था साला। और कोई मौका होता तो कुछ भी न कहता, पर उस दिन भूत सवार था उस पर... 'तीन रूबल जुर्माना!'"

वसीली चुप हो गया, पाइप के दो कश खींचे, फिर धीरे से बोला:

"बस थोड़ी देर की और कसर थी, साले का काम तमाम कर दिया होता।"

"अरे भैया, बड़ा क्रोधी है तू!"

"क्रोधी-वोधी कुछ नहीं, मैं सच बात करता हूं, सब समझता हूं अच्छी तरह। खैर मैं भी उस लाल थूथने को मज़ा चखाके रहूंगा। डिवीजन मैनेजर से शिकायत करूंगा। देख लेना!"

और सचमुच ही उसने शिकायत की।

एक बार डिवीजन मैनेजर रास्ते की जांच-पड़ताल करने आया। उसके तीन दिन बाद पीटर्सबर्ग से कुछ बड़े साहब इंस्पेक्शन करने आनेवाले थे, सो उससे पहले सब कुछ ठीक-ठाक करना था। रोड़ी-वोड़ी डाल दी, सब बराबर कर दिया, स्लीपर सारे देखे, कीले ठोक-ठाक दिए, ढिबरियां कस दीं, खंभों पर रंग कर दिया, क्रासिंगों पर पीली रेत डालने का हुक्म हुआ। पड़ोसिन लाइनमैन ने अपने बूढ़े को भी बाहर निकाल दिया – घास नोचने को। सेम्योन सारा हफ़्ता डटकर काम करता रहा; सब कुछ ठीक-ठाक कर दिया, अपने कफ़्तान की भी मरम्मत कर ली, धो-धा लिया और तांबे के बिल्ले को भी ईंट से रगड़-रगड़कर चमका लिया। वसीली भी काम में जुटा हुआ था। डिवीजन मैनेजर ट्राली पर आया; चार मज़दूर हैंडल घुमाते थे, गियर सर-सर करते, घंटे भर में ट्राली पंद्रह मील पार कर लेती। सेम्योन ने सावधान खड़े होकर सिपाही की तरह रपट दी। सब कुछ ठीक-ठाक निकला।

"कब से है तू यहां?" मैनेजर ने पूछा।

"दूसरी मई से, हजूर।"

"अच्छा। शुक्रिया तेरा। एक सौ चौसठ नम्बर में कौन है?"

फ़ोरमैन भी उसके साथ ट्राली में जा रहा था, बोला:

"वसीली स्पिरीदव।"

"स्पिरीदव, स्पिरीदव... यह वही है न, जिसके बारे में तुमने पिछले साल कुछ कहा था।"

"जी, साहब, वही है।"

"अच्छा, देखते हैं इस वसीली स्पिरीदव को भी। चलो।"

मज़दूर हैंडल घुमाने लगे ; ट्राली चल पड़ी।

सेम्योन उन्हें जाते देख रहा था और मन ही मन सोच रहा था : "ज़रूर कोई तमाशा होगा वहां।"

दो घंटे बाद वह लाइन का चक्कर लगाने निकला। देखता क्या है कि पटरी पर कोई चला आ रहा है, सिर पर सफ़ेद सा कुछ नज़र आ रहा है। सेम्योन ध्यान से देखने लगा – वसीली था। हाथ में छड़ी पकड़े हुए, कंधे पर छोटी सी गठरी, गाल पर रूमाल बंधा हुआ।

"कहां चल दिया, वसीली?" सेम्योन चिल्लाया।

वसीली बिल्कुल पास आ गया ; उसका चेहरा एकदम उतरा हुआ था, चूने जैसे सफ़ेद, आंखें फटी-फटी, बोला, तो आवाज़ कांपने लगी।

"शहर जा रहा हूं ... मास्को ... बड़े दफ़्तर ..."

"बड़े दफ़्तर ... अच्छा! तो शिकायत करने जा रहा है? रहने दे, भैया, भूल जा यह सब!.."

"नहीं, भैया, नहीं भूलूंगा। भूलने का वक़्त नहीं रहा अब। देख रहे हो, कैसे मुंह पर मारा है, ख़ूनोख़ून कर दिया। जब तक ज़िंदा हूं, ऐसे नहीं छोड़ूंगा। इन ख़ून चूसनेवालों को सबक़ सिखाना चाहिए।"

सेम्योन ने उसका हाथ पकड़ लिया :

"रहने दो, वसीली, मैं ठीक कह रहा हूं : कुछ बननें का तो है नहीं।"

"बने बनाएगा क्या! मुझे ख़ुद ही पता है कि कुछ नहीं होना-होवाना ; सच ही कह रहे थे तुम – जो क़िस्मत में लिखा है। मेरा तो कुछ बनेगा नहीं, पर न्याय के लिए मैं ज़रूर लड़ूंगा।"

"तुम यह तो बताओ कि यह सब हुआ कैसे?"

"होना क्या था ... सब कुछ देख लिया उसने, ट्राली से उतरा, चौकी में झांककर देखा। मैं जानता था कि सख़्ती से देखेंगे, सब ठीक-ठाक कर रखा था। वह तो चलने ही वाला था, तभी मैं शिकायत लेकर बढ़ा। वह बरस पड़ा : 'हरामज़ादे, यहां तो सरकारी इंस्पेक्शन होनेवाला है और तुझे शिकायत करने की पड़ी है! यहां तो बड़े-बड़े साहब आनेवाले हैं और तुझे अपनी बंदगोभी

की फ़िक्र है!' मुझसे रहा न गया, मुंह से बात निकल गई, कोई ख़ास नहीं, पर उसे बुरी लगी। कसके हाथ दे मारा... ओफ़, कमबख़्त हमारा धीरज! यहीं पर उसे देता... पर मैं बुत बना खड़ा रहा, मानो ऐसे ही होना चाहिए। वे चले गए, तब होश आया, मुंह धोकर चल दिया।"

"चौकी का क्या होगा?"

"बीवी तो है; संभाल लेगी। भाड़ में जाएं ये सब और इनकी रेल!"

वसीली उठा, चलने को हुआ।

"अच्छा तो, सेम्योन भैया! पता नहीं कहीं न्याय मिलेगा कि नहीं।"

"पैदल जाएगा क्या?"

"स्टेशन पर मालगाड़ी में बैठ जाऊंगा; कल मास्को पहुंच जाऊंगा।"

पड़ोसियों ने हाथ मिलाया; वसीली चला गया और कई दिनों तक उसकी कोई ख़बर न मिली। उसकी बीवी उसका सारा काम करती थी, रात-दिन नहीं सोती थी; मर्द की बाट जोहते-जोहते सूख गई। तीसरे दिन इंस्पेक्शन की गाड़ी गुज़री: इंजन, माल डिब्बा और दो फ़र्स्ट क्लास के डिब्बे। वसीली अभी तक नहीं लौटा था। चौथे दिन सेम्योन ने उसकी बीवी को देखा: चेहरा रो-रोकर फूल गया था, आंखें लाल हो रही थीं।

"लौट आया?" उसने पूछा।

वसीली की औरत ने हाथ झटक दिया, कुछ नहीं कहा और अपनी चौकी की ओर चली गई।

* * *

सेम्योन ने अपने लड़कपन में बेंत की टहनियों से बांसुरी बनानी सीखी थी। टहनी को अंदर से गर्म सीख़ से खोखला कर लेता, फिर उसमें जहां छेद करने होते छेद कर लेता, एक सिरे पर डाट लगा देता और ऐसी बढ़िया बांसुरी बना देता कि जो चाहे बजाओ। ख़ाली समय में वसीली बहुत सी बांसुरियां बना लेता था और अपने एक जान-पहचान के मालगाड़ी के गार्ड के साथ शहर भेज देता था। वहां बाज़ार में वे दो-दो कोपेक की बिक जाती थीं। इंस्पेक्शन के बाद तीसरे दिन शाम को उसने घरवाली को छह बजे की गाड़ी को झंडी

दिखाने को छोड़ा और खुद चाकू लेकर जंगल को चल दिया, टहनियां काटने। वह अपने टुकड़े के आखिर तक पहुंचा – उस जगह रेल लाइन में तेज़ घुमाव था, वहां से नीचे उतरकर वह जंगल-जंगल चल दिया। कोई डेढ़ फ़र्लांग दूर एक दलदल था, और उसके पास बांसुरियों के लिए बहुत अच्छी झाड़ियां उगती थीं। उसने ढेर सारी टहनियां तोड़कर गट्ठर बांधा और घर को चल दिया। वह जंगल-जंगल जा रहा था; सूरज क्षितिज की ओर झुक रहा था, जंगल में सन्नाटा था, बस चिड़ियों के चहकने और पैरों तले सूखी लकड़ियों के चटखने की आवाज़ आ रही थी। सेम्योन काफ़ी दूर आ गया था, अब रेल लाइन आने ही वाली थी। सहसा उसे लगा कि और कोई आवाज़ भी आ रही है, मानो कहीं लोहे से लोहा टकरा रहा हो। सेम्योन तेज़-तेज़ चलने लगा। उन दिनों उनके हिस्से में पटरी की कोई मरम्मत-वरम्मत तो होनेवाली नहीं थी।

"क्या है यह सब?" मन ही मन वह सोच रहा था। जंगल के बाहर पहुंचा – सामने रेल लाइन का पुश्ता था; ऊपर एक आदमी उकड़ूं बैठा कुछ कर रहा था; सेम्योन चुपके-चुपके उसकी ओर चढ़ने लगा: सोचा कोई ढिबरियां चुराने आया है। पर देखता क्या है कि वह आदमी भी खड़ा हो गया, उसके हाथों में सब्बल था; उसने सब्बल पटरी तले अटकाया और झटके से पटरी एक ओर को खिसका दी। सेम्योन की आंखों आगे अंधेरा छा गया; चिल्लाना चाहता था, पर आवाज़ नहीं निकल रही थी। देखा – ऊपर वसीली था, दौड़ने लगा, पर वसीली सब्बल और चाबी लेकर दूसरी ओर ढलान पर लुढ़क गया।

"वसीली, अरे, भैया रे। लौट आ, रे, लौट आ! दे दे मुझे सब्बल। आ जा, रेल जोड़ दें, किसी को कुछ पता नहीं चलेगा। लौट आ! क्यों अपने सिर ऐसा पाप लेता है।"

वसीली नहीं मुड़ा, जंगल में चला गया।

सेम्योन उखड़ी पटरी पर खड़ा था, टहनियों का गट्ठर उसके हाथों से गिर गया। गाड़ी आनेवाली थी, वह भी मालगाड़ी नहीं सवारी गाड़ी। उसे रोका भी नहीं जा सकता: झंडी नहीं है। पटरी ठीक की नहीं जा सकती, ख़ाली हाथों कीले तो ठुकेंगे नहीं। दौड़कर चौकी पर जाना चाहिए, जल्दी से। हे भगवान, मदद करो!

सेम्योन अपनी चौकी की ओर दौड़ा, सांस फूल गई, बस अभी गिरा कि गिरा। जंगल पार किया, चौकी मुश्किल से दो-ढाई सौ गज़ दूर थी। तभी फ़ैक्टरी का भोंपू बजा। छह बज गए! छह बजकर दो मिनट पर गाड़ी गुज़रेगी। हे भगवान! निर्दोष जानों को बचाओ! सेम्योन की आंखों के सामने यह नज़ारा घूम गया: इंजन का बायां पहिया उखड़ी पटरी से टकराएगा, इंजन कांप उठेगा, एक ओर को झुकेगा और स्लीपरों के चीथड़े करता चला जाएगा, और आगे तेज़ घुमाव है और ढलान भी, नीचे पूरे पच्चीस गज़ तक, उधर तीसरे दर्जे में लोग ठसाठस भरे हुए हैं, छोटे-छोटे बच्चे ... अभी वे सब बैठे होंगे, बेख़बर! हे भगवान, मैं क्या करूं! नहीं, चौकी तक जाने और लौटने का वक़्त नहीं रहा।

सेम्योन उल्टे पांव वापस दौड़ चला, पहले से भी तेज़। बदहवास सा दौड़ता जा रहा था, उसे ख़ुद भी पता नहीं था क्या करेगा। उखड़ी पटरी पर गट्ठर पड़ा हुआ था। झुककर एक टहनी निकाल ली, ख़ुद को भी पता नहीं किसलिए, और आगे दौड़ चला। उसे लगा, गाड़ी आ रही है। दूर से सीटी सुनाई दी, पटरियां धीरे-धीरे कांपने लगी थीं ... आगे दौड़ने की हिम्मत नहीं रही; उस भयानक जगह से सौ गज़ दूर रुक गया: तभी दिमाग़ में एक विचार कौंधा। उसने टोपी उतारी, उसमें तह करके रखा सफ़ेद सूती रूमाल निकाला; घुटनों तक ऊंचे बूट में से चाकू निकाला, छाती पर सलीब का निशान बनाया: हे भगवान, तेरा आसरा है।

उसने बाएं बाज़ू में कोहनी से ऊपर चाकू घोंप दिया; ख़ून की धार फूटी, गर्म-गर्म ख़ून; उसमें उसने रूमाल भिगोया, उसे खोला, टहनी पर बांधा और लाल झंडी ऊपर उठा ली।

खड़ा-खड़ा वह लाल झंडी हिला रहा था, गाड़ी दिखाई दे रही थी। इंजन ड्राइवर उसे नहीं देख रहा था, पास आ गया, तो सौ गज़ में इतनी भारी गाड़ी रोक न पाएगा!

उधर ख़ून बहता ही जा रहा था; वह घाव को बगल से दबा रहा था, पर ख़ून रुक नहीं रहा था, गहरा घाव हो गया था। सिर चकराने लगा, आंखों आगे तितरियां सी नाचने लगीं, फिर बिल्कुल अंधेरा छा गया; कानों

में जैसे घड़ियाल गूंज रहे हों। उसे न गाड़ी दिख रही थी, न उसकी आवाज़ सुनाई दे रही थीं; दिमाग में बस एक ही विचार घूम रहा था: "खड़ा नहीं रह सकूंगा, गिर जाऊंगा, झंडी छूट जाएगी, गाड़ी मेरे ऊपर से निकल जाएगी... हे भगवान, मदद करो, किसी को भेज दो..."

आंखों में घुप्प अंधेरा छा गया, मन में सन्नाटा और झंडी उसके हाथ से निकल गई। पर ख़ून से रंगी पताका ज़मीन पर नहीं गिरी: एक हाथ ने आगे बढ़कर उसे पकड़ लिया और ऊंचा उठा लिया, बढ़ती आ रही गाड़ी के सामने हिलाने लगा। इंजन ड्राइवर ने पताका देख ली, रेगुलेटर बंद किया, पीछे को भाप दी और गाड़ी रुक गई।

* * *

डिब्बों में से लोग कूद-कूदकर बाहर निकले। भीड़ लग गई। सबने देखा: ख़ून से लथपथ आदमी बेहोश पड़ा हुआ है और उसके पास एक दूसरा – डंडी पर ख़ून में भीगा कपड़ा पकड़े।

वसीली ने नज़र घुमाकर सबको देखा और सिर झुका लिया।

"मुझे पकड़ लो, मैंने पटरी उखाड़ी है।"